भीलवाड़ा में आयोजित दिनांक 1 दिसम्बर से 3 दिसम्बर 2023 तक मुनिश्री आदित्यसागरजी महाराज ससंघ के सान्निध्य में राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी

आचार्यश्री वादीभसिंह सूरि

– डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ़
(राष्ट्रपति सम्मानित)

प्रस्तावना – शासन नायक भगवान महावीर स्वामी के पदचिह्नों पर चलकर स्वयं को कृतार्थ करने के लिए अनेकानेक महामानवों ने भी अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाया है। न्याय, सिद्धान्त, आगम, प्रमाण, पुराण, कथा, साहित्य आदि विधाओं में रचनाओं का सृजन कर जनसामान्य को वास्तविकता से परिचित कराते हुए स्वयं के कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त किया है। इसी क्रम में नौवीं से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य एक ऐसे दिगम्बर जैन आचार्य हुए हैं, जिन्होंने अपनी सृजनता के बल पर जनसामान्य को श्रेष्ठ जीवन की कला का भान कराया है। उन्होंने अपनी कथा शैली का प्रयोग करते हुए हास्य, विनोद, सिद्धान्त, आगम, न्याय, नीति आदि की शिक्षा को बखूबी प्रस्तुत किया है। गद्य और पद्य दोनों विधाओं में निपुण आचार्यश्री वादीभसिंह सूरि अपने नाम की सार्थकता को प्रकट कर रहा है। निश्चित ही, जिन भावों की सृजनता के साथ उन्होंने क्षत्रचूड़ामणि और गद्यचिंतामणि तथा स्याद्वादसिद्धि की रचना की है, उससे उनकी उदभट प्रतिभा का लोहा विद्वत्वर्ग में माना जाता है। चूंकि अनेक विषय उनके जन्मस्थान, समय, रचनाओं आदि को लेकर ऊहापोह के विषय हैं, परंतु फिर भी उनकी अद्भुत शैली ने साहित्य जगत में अपनी श्रेष्ठतम उपस्थिति दी है।

गद्यचिंतामणि जैसा गद्यकाव्य का उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखकर जैन संस्कृत-काव्य को अमरत्व प्रदान किया है। डॉ. कीथ ने लिखा है – कादम्बरी से प्रतिस्पर्धा करने का दूसरा प्रयत्न ओडयदेव (वादीभसिंह) के गद्यचिंतामणि में परिलक्षित होता है।[1]

जीवन्धरचरित की लोकप्रियता – आचार्यश्री वादीभसिंह सूरि ने जीवन्धर चरित को क्षत्रचूड़ामणि में पद्य रूप में और गद्यचिंतामणि में गद्य रूप में लिखा है। दोनों में जीवन्धर चरित का कथन किया गया है। जीवन्धर चरित पर अनेक कार्य हुए हैं, जोवन्धरस्वामी का चरित लोकोत्तर घटनाओं से भरा हुआ है। अतः उसके अंकन में विविध लेखकों ने अपना गौरव समझा है। अबतक जोवन्धर चरितके प्रख्यापक निम्नांकित ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, जिन्हें हम यहाँ परिलक्षित कर रहे हैं –

---

[1] History of sanskrit Literature by Keith London 1941 page 331.

१. गद्यचिन्तामणि – वादीभसिह सूरि-द्वारा विरचित गद्यकाव्य ।

२. क्षत्रचूड़ामणि – वादीभसिह सूरि-द्वारा विरचित अनुष्टुप् छन्दोमय काव्य।

3. जीवंधरचरित – गुणभद्राचार्य रचित उत्तरपुराणके ७५वें पर्वका एक अंश ।

४. जीवक चिन्तामणि – तिरुतक्क देवर-द्वारा रचित तमिलभाषा का एक प्रसिद्ध काव्य।

५. जोवंधर चरिउ – पुष्पदन्त कवि-द्वारा रचित अपभ्रंश महापुराणको ९९वीं सन्धि ।

६. जीवंधर चम्पू – महाकवि हरिचन्द्र द्वारा रचित्त गद्यपद्यमय संस्कृत चम्पू ग्रन्थ ।

७. जीवंधरचरित – अपभ्रंशभाषामय रइधू कवि-द्वारा रचित १3 संधियों का एक ग्रन्थ।

८. जीवंधरचरिते – वासव के पुत्र भास्कर के द्वारा लिखित कन्नड भाषा का १८ अध्यायात्मक १००० श्लोकों का एक ग्रन्थ।

९. जीवंधरसांगत्य – तेरक नम्बि बोम्मरस के द्वारा लिखित २० अध्यायात्मक १४४९ श्लोकों का एक कन्नड भाषाका ग्रन्थ ।

१०. जोवंधर षट्पदी- कोटीश्वर के द्वारा लिखित १० अध्यायात्मक ११८ श्लोकों का एक कन्नड ग्रन्थ ।

११. जीवंधरचरित – शुभचन्द्र के पाण्डव पुराणान्तर्गत एक अंश (संस्कृत) ।

१२. जीवंधरचरिते –ब्रह्मकवि का कन्नड भाषात्मक ग्रन्थ ।

१3. जीवंधरचरित– कवि नयमल द्वारा रचित हिन्दी छन्दोबद्ध रचना ।

नामों की विभिन्नता – आचार्यश्री वादीभसिहं सूरि, वादीसिंह सूरि, ओडयदेव और मुनि अजितसेन इन नामों का उल्लेख आपके जीवन से मिलता है।

1. कवि का वास्तविक नाम ओडयदेव था, वादीभसिंह उपाधिप्राप्त नाम है। गद्यचिन्तामणि कीतंजौर वाली पाण्डुलिपि की प्रशस्ति में यही नाम अंकित मिलता है। यद्यपि प्रशस्ति के ये पद्य सभी पाण्डुलिपियों में नहीं मिलते, तो भी उपलब्ध पाण्डुलिपि के प्रशस्ति-पद्यों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

श्रीमद्वादीभसिंहेन गद्यचिन्तामणिः कृतः ।
स्थेयादोडयदेवेन चिरामास्थानभूषणः ।।
स्थेयादोडयदेवेन वादीभहरिणा कृतः ।
गद्यचिन्तामणिर्लोके चिन्तामणिरिवापरः ।।[2]

2. आपका दूसरा नाम मुनि अजितसेन मिलता है। यह आपका दीक्षा के पश्चात् प्राप्त नाम है, ऐसा भी उल्लेख प्राप्त होता है।

3. आचार्यश्री अकलंकदेव स्वामी के गुरुभाई आचार्यश्री पुष्पसेन महाराज है। आचार्यश्री पुष्पसेन महाराज के शिष्य वादीभसिंह थे। अतः आचार्यश्री जिनसेन स्वामी और आचार्यश्री वादिराज स्वामी के उल्लिखित वादिसिंह ही वादीभसिंह है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

4. मुनि अजितसेन को वादीभसिंह की उपाधि प्राप्त हुई थी (यह उल्लेख श्रवणबेलगोला के शिलालेख क्रमांक 54 की मल्लिषेण की प्रशस्ति में प्राप्त हुआ है)और ओडयदेव को भी वादीभसिंह की उपाधि प्राप्त हुई थी। स्याद्वादसिद्धि एक दार्शनिक ग्रन्थ की शैली अन्य दो ग्रन्थों क्षत्रचूडामणि और गद्यचूडामणि से भिन्न होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि मुनि अजितसेन+वादीभसिंह और ओडयदेव+वादीभसिंह भिन्न हैं।

अर्थात् प्राप्त प्रमाणों के आधार पर निष्कर्ष निकालना अत्यंत कठिन है कि उपरोक्त चारों नाम वाले एक ही आचार्य हैं या अन्य-अन्य दो आचार्य हैं। दो ग्रन्थों (क्षत्रचूडामणि और गद्यचूडामणि)की लेखन शैली, विषयवस्तु और प्रस्तुति एक जैसी है और स्याद्वादसिद्धि की बिल्कुल भिन्न है। इस आधार पर प्रतीत होता है कि दोनों पृथक्-पृथक् हैं, परंतु हम यहां 9वीं से ग्यारहवीं शताब्दी के काल पर विचार करें तो यह स्पष्ट होता है कि तत्समय की स्थितियां जैन मुनिराजों के लिए अत्यंत कठिन थी, ऐसे में निर्भीक होकर अपनी प्रस्तुत करने वाले मुनिराजों को ही वादीभसिंह की उपाधि से अलंकृत किया जाता होगा, तो वे ही आचार्य जहाँ एक ओर चरितकाव्य की रचना में सिद्धहस्त हैं, वहीं दूसरी दार्शनिक पक्ष को उद्घाटित करने में सिद्धहस्त होंगे। यह उपाधि पाण्डित्योपार्जित है जिसकी प्रस्तुति के लिए उन्हें वादीभसिंह की उपाधि दी गई होगी है। वादीभसिंह का अर्थ है - वादीरूपी हाथियों को जीतने के लिए सिंह के समान। अर्थात् उनकी तार्किक शैली और दार्शनिक पक्ष को प्रकट करने वाला ही व्यक्तित्व इस उपाधि को प्राप्त कर जनमानस में अपनी छवि बनाता है।

---

2 –गद्यचिन्तामणि प्रशस्ति, १० २५७, श्रीरंगम् १९१६ ६० ।

प्रशस्ति में उल्लिखित है कि वादीभसिंह पद उपाधिसूचक ही है, विशेषण-सूचक नहीं, क्योंकि मदवदखिलवादीभेन्द्रकुम्भप्रभेदी -मदयुक्त समस्त वादीरूप गजराजों के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने वाले इस तृतीय पाद से विशेषण का कार्य गतार्थ हो चुकता है। श्री टीएस कुप्पुस्वामी, श्री पं. कैलाशचंद्र शास्त्री और पं. के भुजबली शास्त्री ने भी उक्त अभिप्राय प्रकट किया है।

वादीभसिंह भी यद्यपि न्यायशास्त्रके मर्मज्ञविद्वान् थे और उसी रूप में उनकी प्रसिद्धि थी फिर भी यह 'गद्यचिन्तामणि' और 'क्षत्रचूडामणि' नामक गद्य और पद्य-काव्य उनकी दिव्य लेखनी से प्रसूत हुए इसमें आश्चर्य की क्या बात है? पहले अधिकांश शास्त्रार्थ राजदरबारमें हुआ करते थे अथवा निश्चित वादशालाओं में सम्पन्न होते थे और विजेता विद्वान् राजाओं के द्वारा सम्मान पाता था। जब वादीभसिंह प्रचण्ड वादीरूपी हस्तियों को पराजय के गर्त में गिराने वाले थे तब राजाओंके द्वारा उनको मान्यता स्वयं सिद्ध थी।

मिथ्याभाषणभूषणं परिहरेतौद्धत्यमुन्मुच्यत स्याद्वादं वदता नमेत विनयाद्वादीभकण्ठीरवम् ।
नो चेत्तद्गुरुगर्जितश्रुतिमयभ्रान्ताः स्थ यूयं यतस्तूर्णं निग्रहजीर्णकूपकुहरे वादिद्विपाः पातिनः ।।५५।।[3]

इस आधार पर मेरा व्यक्तिगत मत है कि उक्त चारों नाम (आचार्यश्री वादीभसिहं सूरि, वादीसिंह सूरि, ओडयदेव और मुनि अजितसेन) एक ही व्यिक्त्व के होना चाहिए।

जन्मस्थान – कवि वादीभसिंह का जन्मस्थान के संबंध में अनेक किंवदंतियाँ हैं। स्पष्ट उल्लेख और प्रमाणिक उल्लेख के संबंध में आज भी स्पष्टता नहीं है। फिर भी, अनेक विद्वानों द्वारा किए गए शोध के आधार पर हम यहाँ उनके जन्मस्थान के संबंध में चर्चा करते हैं –

- पण्डित के० भुजबली शास्त्री[4] इन्हें तमिल या द्रविड प्रान्त का निवासी मानते हैं।
- वी० शेष गिरि रावने कलिंग (तेलुगू) के गंजाम जिले के आस-पास का निवासी बताते हैं।
- तञ्जौरमें गद्यचिन्तामणिकी पाण्डु- लिपियोंका प्राप्त होना भी इस बातको ओर संकेत करता है कि कविका निवास तमिलनाड में या उसके आस-पास किसी स्थानमें होना चाहिये ।

श्री पं० के० भुजवली शास्त्री ने लिखा है कि यद्यपि आपका जन्म तमिल प्रदेश में हुआ था तथापि इनके जीवन का बहुभाग मैमूर प्रान्त में व्यतीत हुआ था और वर्तमान मैसूर प्रान्तान्तर्गत

[3] महिषेण प्रशस्ति ।

[4] जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग 6, किरण 2 पृष्ठ 78-87

पोम्बुच्च ही आपके प्रचार- का केन्द्र था। इसके लिए पोम्बुच्च एवं मैसूर राज्य के भिन्न-भिन्न स्थानों में उपलब्ध आपसे सम्बन्ध रखने वाले शिलालेख ही ज्वलन्त साक्षी हैं।[5]

ओडय शब्द प्राकृत भाषा निष्ठ शब्द है। जिसका अर्थ होता है - उष्टदेशीय अर्थात् उड़ीसा देशीय। गञ्जाम जिला मद्रास के उत्तर में है और अब उड़ीसा में सम्मिलित कर दिया गया है। यहाँ पर ओडेय और गोडेय दो जातियाँ निवास करती हैं। सम्भवतः वादीभसिंह ओडेय जातिके रहे होंगे। गञ्जाम जिले में प्रचलित लोक-कथाओं में जीवन्धरचरित आज भी उपलब्ध होता है। तमिल भाषा में जो लोक-कथाएँ प्रचलित हैं, उनमें जीवन्धर की कथा महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। तमिल भाषा के जीवकचिन्तामणि-काव्य के कर्ता तिरुत्तक्कदेव नामक कवि है, जिनका निवासस्थान तमिलनाड है। अतः हमें श्री शेषगिरिराव का मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

गुरु - ओडयदेव या वादीभसिंह ने गद्यचिन्तामणि के प्रारम्भ में अपने गुरु का नाम पुष्पसेन लिखा है और बताया है कि गुरु के प्रसाद से ही उन्हें वादीभसिंहता और मुनिपुंगवता प्राप्त हुई। कवि ने गद्यचिन्तामणि के मंगलवाक्यों में अपने गुरु का स्मरण निम्न प्रकार किया है -

श्रीपुष्पसेनमुनिनाथ इति प्रतीतो दिव्यो मनुर्मम सदा हृदि संनिदध्यात् ।
यच्छक्तितः प्रकृतिमूढमतिर्जनोऽपि वादीभसिंहमुनिपुङ्गवतामुपैति ।।[6]

इससे स्पष्ट है कि पुष्पसेन कवि के काव्यगुरु ही नहीं थे, अपितु वे विद्या और दीक्षा गुरु भी थे ।

समय-निर्णय - वादीभसिंह के समय-निर्णय के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। अभी तक उपलब्ध साहित्य में इनके समय के सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार-धाराएँ प्राप्त होती है -

१. ई० सन् ७७०-८६० ई० की मान्यता

२. विक्रम की ११वीं शती के प्रारम्भ की मान्यता

3. ग्यारहवीं शती के उत्तरार्द्ध की मान्यता

4. बारहवीं शती की मान्यता

(१) प्रथम मान्यता के पोषक पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री और डा० प्रो० दरबारीलाल कोठिया है। आप दोनों महानुभावों ने जिनसेनके आदिपुराण (ई० सन् ८३८), वादिराजके पार्श्वनाथचरित (ई० सन्

---

[5] क्षत्रचूड़ामणि उत्तरार्ध की प्रस्तावना पृष्ठ 4
[6] गद्यचिंतामणि 1.6

१०२५) एवं लघु समन्तभद्र के अष्टसहस्त्रीटिप्पण (विक्रम १३ वीं शती) के वादीसिंह विषयक उल्लेखों के आधार पर उनका समय ई० सन् ८-९वीं शती माना है। डा० दरबारीलाल कोठिया ने 'स्याद्वादसिद्धि' के संदर्भांशों के साथ जयन्तभट्टकी 'न्यायमञ्जरी', कुमारिल के 'मीमांसाश्लोकवार्तिक' एवं बौद्ध दार्शनिक शंकरानन्द की 'अपोहसिद्धि' और 'प्रतिबन्धसिद्धि' के तुलनात्मक उद्धरण प्रस्तुत कर वादीभसिंह का समय ई० सन् ७७०-८६० के मध्य सिद्ध किया है। डॉ० कोठिया ने श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री के समान ही वादीसिंह और वादीभसिंह को एक ही विद्वान् स्वीकार किया है।

पण्डित नाथूराम प्रेमी भी वादिसिह और वादीभसिंह को एक हो व्यक्ति मानते थे। पर जैन साहित्य और इतिहास के द्वितीय संस्करण में उक्त दोनों नामों को एक ही मानने में अस्वीकृति प्रकट की है। पर प्रेमीजी ने इस मत-परिवर्तन का कोई कारण नहीं बतलाया है।

(२) द्वितीय मान्यता के समर्थक विद्वानों में पण्डित नाथूराम प्रेमी और टी० एस० कुप्पुस्वामी शास्त्री प्रमुख है। उक्त दोनों विद्वानों ने अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती परिमल कवि की इस धारा नरेश भोज सम्बन्धी उक्ति का पूर्वार्ध सत्यन्धर महाराज के शोक के प्रसंग में गद्यचिन्तामणि में प्राप्त कर वादीभसिंह का समय भोजदेव के पश्चात् माना है। भोजदेव का राज्यकाल विक्रम संवत् १०७६ से वि० संवत् १११२ माना जाता है। अतएव पण्डित प्रेमी और कुप्पुस्वामी शास्त्री दोनों ही विद्वान् वादीभसिंह को वि० सं० को ११वीं शताब्दीका आचार्य मानते हैं।

(३) ११वीं शती की उत्तरार्द्ध सम्बन्धी मान्यता के समर्थक श्री पण्डित के० भुजबली शास्त्री है। इन्होंने अजितसेन को वादोभसिंह का ही अपर नाम मानकर, उनका काल ११वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है। शास्त्रीजी का दूसरा तर्क क्षत्रचूड़ामणि के -"राजतां राजराजोऽयं राजराजो महोदयैः। तेजसा वयसा शूरः क्षत्रचूड़ामणिर्गुणैः ।।" पद्य में आया हुआ 'राजराज' पद है। इस पद को शास्त्रीजी ने श्लेषात्मक मानकर चरितनायक जोवन्धर के अतिरिक्त तत्कालीन शासक राजराज से सम्बद्ध माना है। यह शासक चोलवंशी 'राजराज' हो सकता है। चोल राजाओं में इस नाम के दो व्यक्ति हुए हैं। प्रथम राजराज का काल ई० सन् ९८५-१०१२ तक तथा द्वितीय का ई० सन् ११४६-११७८ तक माना गया है। शास्त्रीजी ने द्वितीय राजराज का ही वादीभसिंह को समकालीन माना है। तथा उन्होंने श्रवणबेलगोल के शिलालेख नं० ५४, ३, ४० और ३७ द्वारा अपने तथ्यों की पुष्टि की है। अन्तिम निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है- "मेरे पूर्व कथनानुसार जब वादीभसिंह का समय ११वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध निर्विवाद सिद्ध होता है, तब वादीभसिंह को दशम शतक का मानना ठीक नहीं है।"

"मेरे इस अनुमान को श्रीयुत् स्व० आर० नरसिंहाचार्य और श्रीयुत् प्रोफेसर एस० श्रीकण्ठशास्त्री इन दोनों पुरातत्त्वविशारदों ने स्वीकार किया है परन्तु पूर्वोक्त अपने-अपने निर्धारित

समयानुकूल आर० नरसिंहाचार्य वादीभसिंह को द्वितीय राजराज का समकालीन एवं प्रो० एस० श्रीकण्ठशास्त्री प्रथम राजराज का समकालीन मानते हैं। शास्त्रीजी का कहना है कि द्वितीय राजराज की अपेक्षा प्रथम राजराज बहुत प्रसिद्ध था, पर मेरे जानते यह कोई सबल तर्क नहीं है, क्योंकि ग्रन्थकर्ता को तो प्रायः प्रसिद्ध अथवा अप्रसिद्ध तत्कालीन शासक का उल्लेख कर देना भर ही ध्येय रहता है।'

स्पष्ट है कि पण्डित के० भुजबली शास्त्री वादीभसिंह का समय ११वीं शती- का उत्तरार्द्ध मानते हैं।

(४) १२वीं शताब्दी की मान्यता संस्कृत-साहित्य के इतिहास लेखक श्री एम० कृष्णमाचारियरकी है। इन्होंने श्री कुप्पुस्वामी के तर्क के आधार पर ही भोज का राज्यकाल १२वीं सदी मानकर अपना अभिमत प्रकट किया है। लिखा है- King Bhoja flourished in the 11th century. D. and Vadıbhasingha who must have therefore come after him way be orgsigned to the 12th century A. D.2

समालोचन - उपयुक्त अभिमतों पर विचार करने से तथा वादीभसिंह की कृतियों के अवलोकनसे ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि वादीभसिंह के समय के सम्बन्ध में विद्वानों ने पर्याप्त ऊहापोह किया है। द्वितीय मतके प्रवर्तक श्रीप्रेमीजी और कुप्पुस्वामी ने परिमल कवि की उक्ति की छाया गद्यचिन्तामणि में प्राप्त की है। पर यह मान्यता निःसार है। गद्यचिन्तामणि के समस्त सन्दर्भ का अवलोकन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि वादीभसिंह का उक्त गद्य-खण्ड अपने में मौलिक और पूर्ण है, वह किसी का अनुकरण नहीं है। प्रेमीजी एवं कुप्पुस्वामी उक्त सन्दर्भांश को सत्यन्धर महाराज के शोक के प्रसंग में बतलाते हैं, पर वस्तुतः वह सन्दर्भ उस समय का है जबकि जीवन्धर ने काष्ठांगार के हाथी को कड़ा मारा था, जिससे काष्ठांगार क्रोधित हुआ। गन्धोत्कट ने जीवन्धर स्वामी को बांधकर काष्ठांगार के पास भेज दिया और उसने उनके प्राणवध का आदेश दिया, तो समस्त नगर में शोक व्याप्त हो गया और नगरवासी सन्ताप से मग्न हो कहने लगे-

"अद्य निराश्रया श्रीः, निराधारा धरा, निरालम्बा सरस्वती, निष्फलं लोक- लोचनविधानम्, निस्सारः संसारः, नीरसा रसिकता, निरास्पदा वीरता, इति मिथः प्रवर्तयति प्रणयोद्गारिणीं वाणी, सखेदायां च खेचरचक्रवर्तिदुहितरि दयितविमोक्षणाय......।"

यदि उक्त सन्दर्भांश में परिमल कवि के पद्य की छाया मानी जाय, तो गद्य के रूप में निराश्रया श्रीः यह पद पहले नहीं आता। अतः बहुत सम्भव है कि परिमल कवि ने ही गद्यचिन्तामणि के उक्त

सन्दर्भ के आधार पर अपने पद्य को रचा हो। परिमल कवि की रचना पर पूर्ववर्ती कवियों का ऋण सुस्पष्ट है। अतः वादीसिंह पर परिमल का ऋण न स्वीकार कर परिमल पर ही वादीभसिंह का ऋण स्वीकार करना अधिक उचित है। ऐसा मान लेनेसे आदिपुराण और पार्श्वनाथचरित के उल्लेखों का भी औचित्य सिद्ध हो जाता है।

महाकवि वादीभसिंह ने अपने क्षत्रचूड़ामणि और गद्यचिन्तामणि में क्षत्रिय- कुलचूड़ामणि जीवन्धर का चरित निबद्ध किया है। इस चरित का आधार कोई पुराणग्रन्थ अवश्य है। मुझे डॉ० प्रो० दरबारीलाल कोठिया का यह अनुमान ठीक मालूम पड़ता है कि कवि ने उक्त कथानक कवि परमेष्ठी के 'वागर्थ-संग्रह' से लिया हो। जीवकचिन्तामणि ग्रन्थ का निर्माण तो निश्चयतः क्षत्रचूड़ामणि को समक्ष रखकर ही किया गया है। श्री प्रेमीजी ने लिखा है- "तमिल साहित्य के विशेषज्ञ पण्डित स्वामीनाथैया का मत है कि इस ग्रन्थ की रचना क्षत्रचूड़ामणि और गद्यचिन्तामणि की छाया लेकर की गयी है और श्री कुप्पुस्वामी शास्त्री अपने सम्पादित किये हुए क्षत्रचूड़ामणि में इस तरह के छायामूलक बीसों पद्य टिप्पण के रूपमें उद्धृत करके इस बातकी पुष्टि भी की है।"

तमिल विद्वानों ने तिरुत्तक्कदेव का समय ई० सन् की १०वीं शताब्दी माना है। अतः वादीभसिंह का समय इनसे पूर्व सुनिश्चित है। वादीभसिंह ने गद्य- चिन्तामणि में जिस कथा के आधार का निरूपण किया है उस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं ही गणधर द्वारा प्रथित परम्परा का निर्देश किया है-

इत्येवं गणनायकेन कथितं पुण्यास्त्रवं श्रृण्वतां
तज्जीवन्धरवृत्तमत्र जगति प्रख्यापितं सूरिभिः ।
विद्यास्फूर्तिविधायिधर्मजननीवाणीगुणाभ्यार्थिनां
वक्ष्ये गद्यमयेन वाङ्मयसुधावर्षेण वाक्सिद्धये ॥[7]

श्री पं० के० भुजबली शास्त्री ने वादीसिंह का दूसरा नाम अजितसेन माना है, पर अजितसेन के गुरु का नाम पुष्पसेन नहीं मिलता। शास्त्री जी ने खींचतान कर एक पुष्पसेन की अजितसेन का गुरु सिद्ध करने का आयास किया है, पर आश्चर्य यह है कि उन पुष्पसेन का अजितसेन नाम का कोई शिष्य ही नहीं है। उनके शिष्यका नाम वासुपूज्य सिद्धान्तदेव मिलता है। साथ ही अजितसेन और पुष्पसेन के स्थिति-काल के एक होने में भी बाधा है। अजितसेन के सम्बन्ध में कही भी ऐसा निर्देश नहीं मिलता कि वे महाकवि या काव्यग्रन्थोंके निर्माता थे। गद्यचिन्तामणि जैसे श्रेष्ठ गद्य-काव्य के निर्माताके रूपमें मल्लिषेण-प्रशस्ति में उनका उल्लेख अवश्य ही होना चाहिए था, जबकि इस प्रशस्ति में उनकी प्रशंसा

[7] गद्यचिंतामणि, 1.15

लगभग ५० पंक्तियों में की गयी है। एक दूसरी बात यह भी है कि जिन अजितसेन को शास्त्रीजी वादीसिंह कहते हैं वे अजितसेन दार्शनिक विद्वान् हैं, कवि नहीं । अतः के० भुजबली शास्त्री द्वारा समर्थित वादीभसिह का समय तर्कसंगत नहीं है।

श्री कृष्णमाचारियर ने जो अपना अभिमत प्रकट किया है, उसका आधार तो श्री टी० एस० कुप्पुस्वामी द्वारा प्रस्तुत तर्क ही है। अतएव वादीभसिंह का समय डा० प्रो० दरबारीलाल कोठिया द्वारा समर्थित ही तर्कसंगत प्रतीत होता है। श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने अकलंकदेव का गुरुभाई पुष्पसेन को माना है। इन्हीं पुष्पसेन के शिष्य वादीभसिंह थे। अतः जिनसेन और वादिराज द्वारा उल्लिखित वादिसिह ही वादीभसिंह हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। संक्षेप में समस्त प्रमाणों का अध्ययन करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि वादीभसिंह का समय नवम शती है।

रचनाएं – सिंहगर्जना के साथ अपनी प्रवृत्ति के लिए प्रसिद्ध कवि वादीभसिंह सूरि वाग्मित्व, कवित्व और गमकत्व के अद्भुत कवि थे, जिनकी प्रशंसा आचार्यश्री जिनसेन स्वामी द्वारा भी की गई। जब आपके दो ग्रन्थ क्षत्रचूडामणि और गद्यचिंतामणि प्रकट रूप में उपस्थित हुए तब आबाल जन में यही ऊहापोह का विषय बना कि वादीभसिंह जैसे व्यक्तित्व की नाम को सार्थकता देने वाली कृति को होना भी आवश्यक है। जब स्याद्वादसिद्धि कृति प्राप्त हुई तब आपके नाम को सार्थक करने वाला विशेषण वादीभसिंह स्पष्टतया चरितार्थ प्रकट हुआ। 'प्रमाणनौका' और 'नवपदार्थविनिश्चय' ये दो ग्रन्थ भी आपके माने जाते हैं, परंतु दुर्भाग्यवश ये दोनों ही ग्रन्थ अनुपलब्ध है। हाँ, 'नवपदार्थ निश्चय' के विषय में अनेकान्त वर्ष १० किरण ४-५ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह इन, वादीभसिंहसूरि की रचना नहीं है। उसके समाप्तिपुष्पि का वाक्य 'भट्टारक वादीभसिंहसूरि' की कृति के रूप में प्रकट भी किया गया है।

१. स्याद्वादसिद्धि– ग्रन्थ के नाम को सार्थकता उसके प्रतिपाद्य विषयों से स्पष्ट है। इसके १ जीवसिद्धि, २ फलभोक्तृत्वाभावसिद्धि, 3 युगपतनेकान्तसिद्धि, ४ क्रमानेकान्तसिद्धि, ५ भोक्तृत्वाभावसिद्धि, ६ सर्वज्ञाभावसिद्धि, ७ जगत्कर्तृत्वाभावसिद्धि, ८ अर्हत्सर्वज्ञसिद्धि, १९ अर्थापत्तिप्रामाण्यसिद्धि, १० वेदपौरुषेयत्वसिद्धि, ११ परतःप्रामाण्यसिद्धि, १२ अभावप्रमाणदूषणसिद्धि, १3 तर्कप्रामाण्यसिद्धि और १४ गुणगुणी अभेदसिद्धि इन १४ अधिकारों द्वारा अनुष्ट छन्द में प्रतिपाद्य विषयों का निरूपण

किया गया है। अधिकारों के अन्त में जो पुष्पिकावाक्य हैं उनमें वादीभसिंह द्वारा रचित होने की स्पष्ट सुचना है, ग्रन्थ अपूर्ण है।[8]

2. क्षत्रचूडामणि – हेमांगद देश की राजधानी राजपुरी में महाराज सत्यन्धर राज्य करते थे। ये अपनी महारानी विजया में अत्यासक्त थे। अतः राज्य का भार मंत्री काष्ठांगार को सौंप दिया। कृतघ्न काष्ठांगार ने राज्यतृष्णा के वशीभूत होकर राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। युद्धभूमि में क्षात्र धर्मका पालन करते हुए सत्यन्धर काम आये। महाराजकी रानी विजया गर्भिणी थी, अतएव राजवंश की आशा के एकमात्र केन्द्र गर्भस्थ शिशु के संरक्षणार्थ महाराज ने पहले से ही आकाश में उड़ने वाला मयूरयंत्र बनवाया था और उसमें युद्ध की विकट स्थिति के समय महारानी को बैठाकर आकाश में उड़ा दिया गया। सौभाग्यवश वायुयान श्मशान भूमि में पहुंचा और वहीं महारानी के एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। महारानी तपस्वियों के आश्रम में रहकर अपना समय व्यतीत करने लगी और पुत्र का पालन गन्धोत्कट के यहाँ होने लगा। बालक जीवन्धर ने आर्यनन्दि नामक आचार्य से विद्या ग्रहण की। तरुण होने पर कुमार को ज्ञात हुआ कि मैं क्षत्रियपुत्र हूँ। मेरे राज्य का अधिकारी काष्ठांगार बन गया है। अतएव अवसर पाकर वीरशिरोमणि जीवन्धर ने काष्ठांगार को मारकर अपना राज्य प्राप्त कर लिया। बहुत समय तक वैभवविभूति का आनन्द प्राप्त कर स्थायी शान्ति प्राप्तिके हेतु जीवन्धर अपने पुत्र वसुन्धर को राज्य का भार सौंपकर प्रव्रजित हो गये और भगवान् महावीर के समवशरण में रहकर कर्मों की निर्जरा कर मुक्तिलाभ प्राप्त किया।

कवि ने कथावस्तु को बहुत ही सुन्दर रूप में ग्रथित किया है। प्रत्येक पद्य में प्रायः अर्थान्तरन्यास अलंकार पाया जाता है। नीति और सूक्तियोंका तो यह सागर है। शिक्षा के सम्बन्ध में कहा गया है– 'अनवद्या हि विद्या स्यात् लोक-द्वयफलावहा' (३।४५) अर्थात् निर्दोषज्ञान ही इस लोक और परलोकमें फल- दायी है। इसी की पुष्टि में कवि ने दूसरी उक्ति में बतलाया है– 'हेयोपादेयविज्ञानं नो चेद् व्यर्थः श्रमः श्रुतौ' (२।४४) यदि हेय–उपादेयरूप विवेकबुद्धि जागृत न हुई तो शास्त्राभ्यास में किया गया श्रम व्यर्थ है। कविने निर्धनता का सफल चित्रण करते हुए लिखा है–

दारिद्र्यादपरं नास्ति जन्तूनामप्यरुन्तुदम् ।
अत्यक्तं मरणं प्राणैः प्राणिनां हि दरिद्रता।।
रिक्तस्य हि न जागर्त्ति, कीर्तनीयोऽखिलो गुणः ।
हन्त किं तेन विद्यापि, विद्यमाना न शोभते ॥[9]

---

8 न्यायकुमुद चन्द्रोदयको प्रस्तावना, पृष्ठ ११२ और 'जनसाहित्य और इतिहास' पृष्ठ

निर्धनता से बढ़कर संसार में अन्य कोई भी कष्टदायक वस्तु नहीं है। यह प्राण ही नहीं लेती, पर अन्य सभी प्रकारके कष्टोंको प्रदान करती है। वस्तुतः यह विपत्तियों का घर है। निर्धन व्यक्ति के प्रशंसनीय सम्पूर्ण गुण जागृत नहीं होते और तो क्या विद्यमान गुण भी शोभित नहीं होते हैं।

कविने विषयासक्ति के दुष्परिणाम, वृद्धावस्था, उदारता, आत्मनिरीक्षण, आत्मोद्धार, विपत्ति, वैराग्य, सज्जन-दुर्जन स्वभाव आदि का सफल चित्रण किया है। इस काव्य में गर्भित सूक्तियों का सांस्कृतिक अध्ययन करने पर ८वीं, ९वीं शताब्दी की अनेक मान्यताएँ मुखरित हो उठती है।

3.गद्य-चिन्तामणि - यह गद्यकाव्य है। इसकी भी कथावस्तु पूर्वोक्त क्षत्रचूड़ामणि की कथा ही है। कवि ने कथानक को ११ लम्बों में विभक्त किया है। कवि की गद्यशैली कादम्बरो की गद्यशैली के समान है। कवि ने इस कथा में काव्यत्व का पूर्णतया समावेश किया है। पात्रों के चरित्र भी जीवन्तरूप में चित्रित हुए हैं। इस कृति में अप्रतिम कल्पना-वैभव, वर्णन-पटुत्ता और मानव-मनोवृत्तियों का मार्मिक निरीक्षण पाया जाता है। महाराज सत्यन्धर काष्ठांगार का आक्रमण सुनकर आशा-निराशा के द्वन्द्वमें पड़ जाते हैं। उनकी इस द्वन्द्वात्मक विचारधारा का कवि ने हृदयग्राही चित्रण किया है।

प्रासाद, नगर, वन, श्मशान, राजसभा एवं पूर्वभवावली का ब्यौरेवार चित्रण किया गया है। वर्णन-विविधता के साथ भावानुकूल भाषा का प्रयोग भी श्लाध्य है। बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् की उक्ति इस ग्रन्थ के समक्ष झूठी प्रतीत होती है। कवि ने भाषा का प्रयोग रमणीय और भावों के अनुसार दीर्घ समास एवं अल्प समास के रूप में किया है। जहाँ विषय भाव-प्रधान मार्मिक अथवा गम्भीर होता है वहाँ शैली बड़ी ही सशक्त एवं प्रभावोत्पादक पायी जाती है। जब जीवन्धर अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए काष्ठांगार पर आक्रमण करता है, उस समय काष्ठांगार का रौद्र रूप दर्शनीय है यथा- स रुष्टः काष्ठांगारः कोधवेगस्फुरदोष्ठपुटतया निकटतिनो निजाह्वानकृते कृतागमान्कृतान्तदूतानिव स्वान्तसन्तोषिभिः सान्त्वयन्वचोभिः नातिचिरभावि- नरकावसथेभवदवतमसप्रनयमिवात्मानं प्रतिग्रहीतुकाममागतं करालं कालमेघा- भिधानं करिणमारुह्य रोषाशुशुक्षणि विजम्भमाणशोणेक्षणतीक्ष्णाचिश्छटा- च्छन्नाङ्गतया सप्ताचिषि निमज्जयन्निजस्वामिद्रोहभावं विभावयितु सत्याप- मन्निव सत्यन्परमहाराजतनयाभिमुखमभोयाय ।

---

[9] क्षत्रचूडामणि 3.6,7

कवि जिस समय किसी उत्सव या विलास का चित्रण करता है उस समय उसकी शैली अपेक्षाकृत क्लिष्ट एवं प्रगाढ़ हो जाती है। दीर्घकाय समास, विपुल वाक्य, विशिष्ट एवं श्लिष्ट पदावली चित्रकाव्य के समस्त साधन को उपलब्ध कर देती है। जोवन्धर के जन्मोत्सव का चित्रण करता हुआ कवि कहता है-

यस्मिंश्च जातर्वात जातपिष्टातकमुष्टिवर्षपिञ्जरितहरिन्मुखमुन्मुखकुब्ज-वामनह्याकृष्यमाणनरेन्द्राभरणं प्रणयभरप्रवृत्तवारयुवतिवर्गबल्गनरणितमणि-भूपणनिनदभरितहरिदवकाशं निमंर्यादमदपरवशपब्ययोपिदास्लेपलज्जमानराज-बल्लभं।।

वस्तुतः गद्यचिंतामणि काव्य का महत्व कथानकगठन, चरित्र-चित्रण, वस्तु-विन्यास एवं रसोन्मेष में है।

उपसंहार - वादीभसिंह सूरि एक तार्किक और दार्शनिक व्यक्तित्व के नामसंज्ञा का उदाहरण है। इस संज्ञा को चरितार्थ करने के लिए स्याद्वादसिद्धि ग्रन्थ की रचना की है। वादियों को अहंकार को परास्त कर जिनमत की स्थापना कर सिंह गर्जना करने का श्रेय श्री वादीभसिंह सूरि को प्राप्त हुआ है। सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जिस समय अनेक वादि-प्रतिवादियों को बोलबाला था, अपने-अपने मतों की स्थापना के लिए अनेक प्रकार तर्क देकर सिद्धि कर रहे थे, उस समय जिनमत के समीचीन तथ्य को प्रकट करने वाले श्री वादीभसिंहसूरि हुए हैं। जहाँ आपके द्वारा रचित क्षत्रचूडामणि और गद्यचूडामणि आपकी साहित्यिक प्रतिभा के अप्रतिम उदाहरण हैं, वहीं दूसरी ओर स्याद्वादसिद्धि नामक ग्रन्थ आपकी सैद्धान्तिक, आगमिक, तार्किक, न्यायशैली और वादि-प्रतिवादियों को परास्त करने की विद्या से भरा हुआ है; ऐसे में, आपकी उद्भट प्रतिभा ने समीचीन पदार्थों की प्रतिपत्ति में दृढ़तम क्रियान्वयन किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- History of sanskrit Literature by Keith London 1941 page 331.
- गद्यचिन्तामणि प्रशस्ति, १० २५७, श्रीरंगम् १९१६ ६० ।
- महिषेण प्रशस्ति ।
- जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग 6, किरण 2 पृष्ठ 78-87
- क्षत्रचूड़ामणि उत्तरार्ध की प्रस्तावना पृष्ठ 4
- गद्यचिंतामणि 1.6

- गद्यचिंतामणि, 1.15
- न्यायकुमुद चन्द्रोदयको प्रस्तावना, पृष्ठ ११२ और 'जनसाहित्य और इतिहास' पृष्ठ
- क्षत्रचूडामणि 3.6,7
- गद्यचिन्तामणि, वशम सम्ब, १० २१९।
- वही, प्रथम सम्ब, पू० ४3 ।
- क्षत्रचूडामणि 3।६, ७।
- जैन साहित्य और इतिहास, ५० ३२५ ।
- गद्यचिन्तामणि, ११११५ ।
- जैन सिद्धांत भास्कर, भाग ७, किरण १, १०७ ।
- 2. History of classical Sanskrit literature by M. Krishna machari- yar, page 477 Madras 1937.
- डॉ० दरबारीलाल कोठियाने इस तथ्यका उद्घाटन स्याद्वादसिद्धिकी प्रस्तावना पृ० २७ में किया है।
- गद्यचिन्तामणि, पंचम लम्ब, ५० १ *१, श्रीरंगम्, १९१६ ई० ।
- जैन साहित्य और इतिहास, बम्बई १९५६, १० *२५ ।
- क्षत्रचूड़ामणि, ११११०६ ।
- जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ६, किरण २, १० ७८-८७ तथा भाग ७, किरण १
- जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ६, किरण २, ५० ८६ ।
- स्याद्वादसिद्धि, माणिकचन्द्र ग्रन्यमाला, प्रस्तावना, १० ११ ।
- न्यायकुमुदचन्द्रकी प्रस्तावना, माणिकचन्द्र प्रन्यमाला, ५० ११११ ।
- कवित्वस्य परा सीमा वाग्मित्वस्य परं पदम् । गमकत्वस्य पर्यन्तो वादिसिहोच्यते न कः ।। महापुराण (भारतीय ज्ञान० १९५१) ११५४
- स्याद्वादगिरमाश्रित्य वादिसिंहस्य गजिते । दिग्नागस्य मदध्वंसे कीतिभंगो न दुर्घटः ।।-पावं० १।२१ ।

- तदेवं महाभागैस्ताकिका रुपज्ञातां श्रीमता वादीमसिहेनोपलालितामाप्तमीमांसागलं- चिकीर्षवः स्याद्वादो द्धासिसत्यवाक्यमाणिक्यमकारिकाषटमदेकटकाराः सूरयो.......प्रतिज्ञादलोकमेकमाह-अष्टसह्ली-टिप्पण, ५० १ ।
- जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ६, किरण २, ५० ७८-८७ ।
- जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ८, किरण २, पृ० ११७ ।
- गद्यचिन्तामणि, भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण, ११६ ।
- तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्यपरम्परा

आयतस्तू:

- डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ़
154, गीतांजलि ग्रीनसिटी,
संजय ड्राइव रोड़, सागर 470002
aasheishjain@gmail.com
9329092390